(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ
M.Sc., Ph.D.

वर्ष-30 नवम्बर-2021 अंक-11

दीपावली के उपलक्ष्य में समस्त साधकों को ध्यान द्वारा अन्दर के द्वीप प्रज्जवलित करते हुए अपना बाहरी जीवन 'प्रकाशमय' बनाने हेतु शुभकामनाएं।

कोरोना महामारी (कोविड-19) के कारण जुलाई, 2020 से अक्टूबर, 2021 तक 16 महीनों की ध्यान पत्रिका नहीं छपी है।

जीवन के कुछ सत्य

भ० गीता (22.10) के अनुसार, भूत प्राणियों की चेतना 'मैं' हूँ।
समस्त प्राणियों की जो 'ज्ञान शक्ति' है–
जो अन्त:करण की 'वृत्ति विशेष' है,
उस ज्ञान शक्ति का नाम 'चेतना' है।
यह प्राणियों के समस्त अनुभवों की हेतु भूता प्रधान शक्ति है–
इसलिए इसको भगवान् ने अपना स्वरूप बतलाया है;
प्राणियों की 'चेतना', मेरा ही स्वरूप है–
इस चेतना से विहीन प्राणी, निर्जीव हो जाता है।

–महर्षि श्री महेश योगी

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

पंजीकरण संख्या : 280/2013

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346

Facebook : dhyansatsangsabha@gmail.com

Website : chetna-vigyan.in

मानव तन अनमोल

✍ 'हंस' श्री अमरनाथ (09034334644)

मानव तन मुश्किल से मिला है, सब ने यही बतलाया।
पर मैंने अनमोल खजाना, कौड़ी समझ के लुटाया॥

बाल अवस्था यूं ही गंवाई, की बहुत नादानी।
होश रहा कुछ भी नहीं, आई मुझ पे जवानी॥

बातों ही बातों में बीती रे उमरिया, मुझे होश कभी ना आया।
घट घट में जो बसा हुआ है, उसे मन में कभी नहीं बसाया॥

मन मन्दिर में उसे ना बसाकर, वक्त यूं ही गंवाया।
यूं ही बीत गया जीवन सारा, बुढ़ापा देखकर तू पछताया॥

वृद्धभ्यो, कछु ना सूझी मृत्यु संग उमरिया बीती।
किया कभी ना भजन, ओ मेरे मन उमरिया यूं ही बीती॥

जान बूझ कर अपने हाथों, यह हीरा जन्म गंवाया।
मीरा बाई ने इसी जन्म में, 'राम रतन धन' कमाया॥

मानव तन मुश्किल से मिला है, सब ने यही बतलाया।
पर मैंने अनमोल खजाना, कौड़ी समझ के लुटाया॥

डॉ० शम्भूनाथ द्वारा लिखित, ध्यान पत्रिकाओं का सार–

वर्ष 2005 – 16.1 = 26.11 (5 – 13); 16.2 = 29.12 (7 – 14);
16.3 = 26.9 (9 – 16); 16.4 = 29.12 (14 – 21);
16.5 = 26.7 (5 – 13); 16.6 = 29.6 (8 – 15);
16.7 = 27.8 (14 – 17); 16.9 = 27.8 (17 – 26);
16.10 = 26.12 (5 – 14); 16.11 = 26.8 (8 – 16);
16.12 = 26.10 (13 – 21).

जैसा संग ; वैसा रंग

✍ श्रीमती ऊषा गर्ग (मो० 09991846415)

ध्यान, जीवन जीने की कला है। स्वयं सुख से जीने की; और औरों को सुख से जीने देने की। सब सुख से जीना चाहते हैं और दुःखों से दूर रहना चाहते हैं। परन्तु जब हम जानते नहीं; सुख क्या है और कैसे प्राप्त किया जाए?

लगातार ध्यान के अभ्यास से सुख की खोज करनी नहीं पड़ती;

अपने आप सुख से जीने की कला आ जाती है।

पहले के समय में बच्चों को पहले दीक्षा दी जाती थी - यानि कि जीने की दिशा। जिसमें ध्यान, योग, और प्रार्थना आदि; सब पहले सिखाया जाता था बाद में बुद्धि का ज्ञान दिया जाता था। परन्तु समय के साथ साथ यह उलट गया। पहले बुद्धि का ज्ञान हो गया दिशा बदल गई। सुख की जगह; दुःख ने ले ली। स्वयं भी आदमी दुःखी होता है और दूसरों को भी दुखी करता है। अगर ध्यान की यही दिशा उसको पहले दे दी जाए; तो सभी जगह सुख ही सुख हो। अपनी बुद्धि के बल पर आदमी बहुत कुछ करता है पर बाहर के जगत में ही; अर्थात् करनी के क्षेत्र में ही।

अगर भगवान् के क्षेत्र में जाना है ; तो मन ही काम करेगा।

क्योंकि अन्दर की दुनिया में जाने की स्वतन्त्रता;

भगवान् ने केवल मन को दे रखी है।

और यह सम्भव केवल ध्यान से है। इसके अभ्यास से ईश्वरीय शक्ति तो उसे मिलेगी ही; और वह बाहर के क्षेत्र में बहुत उन्नति करेगा। और सुख जो हर आदमी की मांग है; वह भी मिलेगा। संत कबीर अनुसार :

जेती लहर समुद्र की, ते ती मन की दौर।

सहजे हीरा नीपजै, जो मन आवे ठौर॥

समुद्र की जितनी तरंगें हैं, उससे अधिक मन की चंचलताएं हैं। यदि मन अपने आप में शान्त हो जाए तो सहज ही ज्ञान हीरे की प्राप्ति हो जाए।

हमारा मूल स्त्रोत; जिसके हम अंश हैं;

वह हमारे भीतर जीवात्मा के रूप में है।

उससे हमारा सम्बन्ध जुड़ जाये; तो हमें स्थायी सुख मिलेगा-उसी आत्मतत्व से जुड़ने का नाम; ध्यान है। रात को जब हम थककर सोते हैं-तो कुछ समय के लिए गहरी नींद की अवस्था आती है। हमें कुछ भान नहीं रहता; मैं कौन हूं और कहां हूं? हमारा सबसे सम्बन्ध टूट जाता है; और चेतना का आत्मा से सम्पर्क हो जाता है। प्रमाण यह होता है; कि हमें नई ऊर्जा मिल जाती है-थकावट, परेशानी सब समाप्त हो जाती है; परन्तु यह कुछ समय के लिए। अगर इसी को दिन में तीन बार जागते हुए, आंख बंद करके बैठें; ताकि हमारा ईश्वरीय क्षेत्र में ज्यादा प्रवेश हो-हमें अधिक लाभ मिले और स्थायी सुख मिले। इसी अभ्यास का नाम ध्यान (Meditation) है।

हमारे अन्दर मान-अपमान, अच्छे-बुरे, कई संस्कार जमा हैं। जब आंख बन्द करते हैं; तो संस्कार बाहर निकलते हैं बस चुपचाप बैठे रहना है; जो हो रहा है, उसको होने देना है। अंदर के विकार निकलेंगे दृष्टा बनकर देखते रहना है। ध्यान रखना; कि नंगी जमीन पर नहीं बैठना। कुर्सी, बेड (Bed), कहीं भी बैठ सकते हैं जमीन पर कपड़ा बिछा कर। इसी अभ्यास से भगवान् का प्रगट होगा बस रोज तीन बार; हो सके तो कम ज्यादा भी कर सकते हैं।

लगातार अभ्यास करने से हमारी बुराईयां हमारे प्रयास से नहीं,

अपने आप समाप्त होने लगेंगी; जैसे क्रोध और मान अपमान का डर।

क्या अच्छा है? क्या बुरा है? इसकी प्रेरणा मिलती रहेगी। भगवान्, गुणों की खान है। जब उनसे दोस्ती होगी; तो वो ही बात हो जायेगी जैसा संग वैसा रंग। बहुत सरल है कृप्या पहले पढ़िए, फिर जीवन में अपनाईए; और निहाल हो जाईए। अपना जीवन तो सफल बनाओ; अपने सम्पर्क में आने वालों को प्रेरित करो। यह मत सोचना कि यह बच्चा है या बूढ़ा है; नहीं कर पाएगा। सब कर सकते हैं बस आंख बन्द करके; आराम ही करना है।

एक बार राम का नाम लेकर-आज से नहीं; अभी से आरम्भ करो।

(1936-2009)

सत्संग

✍ डॉ० शम्भूनाथ

सत्संग का सन्धि विच्छेद है-सत् + संग।

शास्त्र कहता है-ब्रह्म सत्यं, जगत मिथ्या।

सत् का अर्थ है ब्रह्म, बाकी सब मिथ्या है। परन्तु जब मिथ्या, सत् के संग में आता है तब, सत् उस पर, अपना प्रभाव अवश्य डालेगा। ब्रह्म, 'निर्गुण निराकार तत्व का सागर' है और भावों से परे जगत में है। सागर का एक गुण है वह, हमेशा आगे बढ़ना जानता है परन्तु पीछे हटना, नहीं जानता। सागर का यह स्वभाव 'सागर की सतह की लहरों' से स्पष्ट हो जाता है।

ब्रह्म अद्वैत है। यदि अद्वैत आगे बढ़ता ही जाएगा, तो द्वैत निकलेगा। प्रकृति में एक से अनेक होने का नियम है। वनस्पति जगत में एक बीज, अपने को अनन्त बीजों में प्रगट कर देता है। अतः अद्वैत क्षेत्र की पृथ्वी पर, अद्वैत को द्वैत जगत प्रगट करने के लिए अपने को 'द्वैत जगत का बीज' बनाना पड़ेगा।

इस समस्या को दर्शन शास्त्र ने इस प्रकार सुलझाया कि अद्वैत ने 'निर्गुण निराकार तत्व के सागर' की सतह पर - चौरासी लाख (अनन्त) जड़ों की स्थापना की, जिसका कोई अस्तित्व नहीं है। एक दृष्टि से 'ब्रह्म और जड़ों' में समानता है ये दोनों, निर्गुण और निराकार हैं। जड़ों में 'ब्रह्म तत्व' पिरोने से, सारी जड़ों का अस्तित्व बन जाता है। अतः ब्रह्म, अद्वैत जगत की पृथ्वी में 'पेड़ रूपी द्वैत जगत का बीज' बन गया समय आने पर, अनन्त जड़ों में प्रवेश करके अनन्त गुणों और आकारों का 'द्वैत जगत', अद्वैत से निकला और सृष्टि की रचना हो गई।

मात्र ब्रह्म, अनादि है। केवल ब्रह्म है ब्रह्म के अलावा जो कुछ है, वह 'ब्रह्म से सत् के गुण के कारण' जड़ो का अस्तित्व बन कर निकला। यह 'जड़ और सत् के संग' से संभव हुआ। जड़ों में ब्रह्म पिरोने से, 'जड़ और ब्रह्म' का जो संग हुआ उससे अनन्त रूपों और अनन्त आकारों का 'द्वैत जगत' उत्पन्न हुआ जिसे हम संसार या जगत के नाम से जानते हैं।

यह जगत, जो जड़ के सत्संग से उत्पन्न हुआ-ब्रह्म का अवतार है। ब्रह्म, अद्वैत से द्वैत जगत में 'निर्गुण निराकार' के अनन्त रूपों और गुणों में अवतरित हुआ। यह जगत, दो भागों में विभाजित हो गया निर्जीव पदार्थ और जीव। दोनों, 'अनन्त गुणों और आकारों' में प्रकट हुए। धीरे धीरे जीव का विकास हुआ और एक समय आया, जब जीव पहले मनुष्य के रूप में प्रगट हुआ तब जगत के सारे देवता प्रसन्न हुए।

अतः सन्त तुलसीदास ने अपनी रामायण में भी कहा

बड़े भाग्य मानुष तन पावा, सुर दुर्लभ सद् ग्रन्थहिं गावा।

जिस जड़ में, ब्रह्म के पिरोने या सत्संग से जीव उत्पन्न हुए-उस जड़ का नाम, 'मन' रख दिया गया। इसी कारण सारे जीव में, मन है।

उदाहरण- जब पानी में चीनी घुल जाती है तब शर्बत बन जाता है। शर्बत में पानी और चीनी दोनों हैं, परन्तु शर्बत न पानी है और न ही चीनी है, बल्कि तीसरा अस्तित्व 'शर्बत' है। अतः जब ब्रह्म, मन में पिरोया तब जीव उत्पन्न हुआ। जीव में 'ब्रह्म तत्व' और 'जड़ मन', दोनों हैं, परन्तु मन अब न जड़ है और न ही ब्रह्म है, बल्कि तीसरा अस्तित्व 'जीव' है। सन्त तुलसीदास ने लिखा है

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
सत्-चेतन-घन आनन्द राशी॥

अर्थात् जड़ की इस अवस्था के पश्चात्, जड़ का सत्संग समाप्त हुआ और आगे का विकास, जीव के सत्संग द्वारा होना है। हर मनुष्य की यह अनुभूति है कि बीज से जड़ें निकलती हैं और जड़ों से पेड़ निकलता है परन्तु जब पेड़ का आगे बढ़ना बन्द हो जाता है तब बीज, पेड़ पर अपना हक नहीं जमाता और उसे समाज को सौंप देता है।

इसी प्रकार से 'पृथ्वी रूपी भावों से परे क्षेत्र' में ब्रह्म, जड़ों में पिरोकर द्वैत जगत का, 'भावों से परे क्षेत्र में' बीज बन कर-पहले परा जगत (देवी देवताओं का जगत) और फिर 'पेड़ रूपी द्वैत जगत' में उत्पन्न हुआ। यह

प्रकृति है कि जब कोई नई वस्तु उत्पन्न होती है, उसके रख रखाव की बात आती है इस तरह हम देखते है कि प्रकृति में आगे बढ़ने का गुण है। आगे बढ़ने से 'जो नई वस्तु पैदा होती है', उसके रख रखाव की बात भी उठती है।

इसीलिये प्रकृति के अंश, समस्त जीवों में ये दोनों बातें देखने को मिलती हैं-ऐसा द्वैत जगत उत्पन्न कर के ऊपर बताए हुए, बीज की भांति-ब्रह्म ने द्वैत जगत को 'जीवों के कर्मों के हाथ' सौंप दिया। प्रकृति की इस अनुभूति को, सन्त तुलसीदास ने अपनी रामायण में इस तरह लिखा

कर्म प्रधान विश्व करि राखा।

जो जस करई सो तस फल चाखा॥

सारे जीव के जीवन के विकास का आधार, उनके कर्मों की देन है परन्तु मनुष्य तक पहुंचने के पहले सारे जीव, मात्र कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म करके जीवन बिताते हैं।

मात्र मनुष्य, दो तरह के कर्मों का अधिकारी है- इन्द्रिय जगत के कर्म और 'इन्द्रिय और बुद्धि से परे' जगत के कर्म। बुद्धि द्वारा इन्द्रिय जगत के कर्म और इन्द्रिय जगत के सुखों का भोग, दोनों ही 'जीवों के अनुभव' को बहुत दुखदायी हैं। कृष्ण दर्शन (2.48) के अनुसार

योगस्थ कुरु कर्माणि

यदि जीव, मन में 'योग शक्ति' पिरोकर और मन को इस शक्ति द्वारा तर बतर करके बुद्धि द्वारा 'इन्द्रिय जगत में कर्म' करे और इन्द्रिय सुख का भोग करे, तो 'इन्द्रिय जगत सुखदायी' हो जाएगा।

योग का अर्थ है-मन और ब्रह्म का योग-अर्थात् मन का सत्संग। सृष्टि में मन, केवल जीव के पास है। और जीवों में मात्र मनुष्य, वह कर्म करने योग्य है-जिस कर्म के माध्यम से जीव का मन, ब्रह्म के क्षेत्र में भ्रमण करके-निर्गुण निराकार तत्व के सागर में गोता लगाकर-अपने मन में 'ब्रह्म तत्व पिरोकर' लौटते समय, 'पराजगत को सत् की शक्ति' देते हुए-इन्द्रिय जगत के कर्मों के समय, इन्द्रिय जगत को 'सत्' प्रदान करता है। इस प्रकार

ध्यान के अभ्यास (Meditation) द्वारा, मन का सत् से संग होता है। इस सत्संग के परिणामस्वरूप, परा जगत के देवताओं का सत्संग हो जाता है। और इन्द्रिय जगत की प्राकृतिक शक्तियों अर्थात् देवताओं का भी सत्संग हो जाता है। इन सत्संगों के माध्यम से प्रकृति के समस्त देवताओं, निर्जीव पदार्थों और निम्न स्तर के जीवों का रख रखाव होता है। जो ब्रह्म की शक्ति, मन में पिरो जाती है उसका संग जीव से होने के कारण, जीव में उच्च स्तर की जागृति और आनन्द (Consciousness & Bliss) पिरोने लगते हैं जिससे जीव का 'आत्म उत्थान' होता है।

मनुष्य जन्म लेते ही, तीन प्रकार की जागृति के चक्र में आ जाता है-निद्रा की जागृति, स्वप्न की जागृति और इन्द्रिय जगत की जागृति। इन जागृतियों में निद्रा का ज्ञान, स्वप्न का ज्ञान और 'इन्द्रिय जगत' का ज्ञान है।

मनुष्यों के लिए दो संभावनाएं हैं

(1) पहली सम्भावना यह है कि नित्य, 'इन्द्रिय जगत की जागृति' प्राप्त होने के पश्चात् वह मेहनत का कर्म करके, 'इन्द्रिय जगत के विषयों की जागृति' प्राप्त करके 'इन्द्रिय जगत के विषयों का ज्ञान' प्राप्त करे और इस ज्ञान के आधार पर, अपना जीवन निर्वाह करे।

(2) दूसरी सम्भावना यह है कि इन्द्रिय जगत की जागृति प्राप्त होते ही, नित्य प्रात: थोड़े समय के लिए सत्संग करके फिर 'इन्द्रिय जगत के कर्मों' में आए। ऐसा करने से मनुष्यों में, 'बुद्धि से परे क्षेत्र की जागृति' उत्पन्न होने लगेगी। इस जागृति में ब्रह्म ज्ञान है। जिस किसान को खाद और बीज का ज्ञान नहीं है; वह खेती करने में भी सफल नहीं होता इसी प्रकार से जो मनुष्य, बिना 'परा जगत के ज्ञान' के मात्र इन्द्रिय जगत के विषयों के ज्ञान के सहारे, जीवन निर्वाह करता है उसका जीवन भी सफल नहीं होता अर्थात् सुखमय नहीं होता। भले ही वह, सुख के साधान जुटाने में सफल हो जाए।

इस तरह पृथ्वी, 'कर्म ज्ञान का विद्यालय' है और मनुष्य का जन्म, जीवन की चौथी भावातीत जागृति (Transcendetntal Consciousness)-

जागृत करने हेतु, होती है। यह एक प्रकार की विद्या है-जो हर मनुष्य के जीवन को सुखी जीवन की ओर ले जाती है। इस विद्या का ज्ञान, उन कर्मों में है-जिन कर्मों में 'बुद्धि के क्षेत्र के प्रयत्न' नहीं है,, मनुष्य का 'मैं' नहीं है और 'इन्द्रियां भी कर्मशील' नहीं हैं। ऐसे कर्मों के माध्यम से मन, सत् का संग करता है और अपने में 'सत् की शक्ति' पिरोकर सत् के गुणों को उभारता है। जो बच्चा पढ़ता है वह खेलता भी है दोनों तरह के कर्म न करने से वह, इन्द्रिय जगत के विषयों की पढ़ाई' में भी सफल नहीं हो सकता

इसी प्रकार से 'ब्रह्म ज्ञान की पढ़ाई' करने वाले व्यक्ति का मन, 'परा जगत में विचरण' करके 'परा जगत का कर्म' होने के पश्चात्-यदि 'इन्द्रिय जगत के विषयों के कर्मों' में वापस नहीं आता, तो ऐसा मन, 'ब्रह्म ज्ञान के क्षेत्र में विचरण' करके अपनी जागृति को बढ़ाने में भी सफल नहीं होता।

इस प्रकार जीव दो प्रकार के हैं

(1) एक वे जो, उपर्युक्त दो कर्मों में से केवल एक क्षेत्र के कर्मों में व्यस्त रहते हैं।

(2) दूसरे वे जो, दोनों प्रकार के कर्मों में व्यस्त रहकर जीवन निर्वाह करते हैं। दूसरे प्रकार के जीवों के जीवन में सत्संग का समय बढ़ता ही चला जाता है और उसी अनुपात में 'इन्द्रिय जगत के विषयों का समय' घटने लगता है। एक समय आता है जब उनका मन, परा जगत के सुखों में रहकर इन्द्रिय जगत का कर्म करने में अभ्यस्त हो जाता है। ऐसे मनुष्यों को समझ लेना चाहिए कि वे, 'योगस्थ अवस्था को प्राप्त' हो गए हैं।

सन्त कबीर, एक उच्च स्तर के सन्त हुए हैं-उनके जीवन का अधिकतर भाग, सत्संग में ही व्यतीत हुआ है। सत्संग के पश्चात्, अपनी 'योगस्थ होने की अनुभूति' निम्न प्रकार से व्यक्त की है

प्रेम गली अति सांकरी, तामे दोऊ न समाय।
जब मैं था तब हरि नहीं, जब हरि था तब मैं नाहिं॥

वृक्ष तो पृथ्वी के ऊपर रहता है परन्तु बीज, हमेशा पृथ्वी के अन्दर रहता है। पेड़ के दो संसार हैं पृथ्वी के अन्दर और पृथ्वी के बाहर। पृथ्वी के बाहर के भाग को

जन्म देने वाला, पृथ्वी के अन्दर है और 'पृथ्वी की शक्ति' से ही पेड़ के बाहर का जन्म होता है इसी प्रकार से जीव हमेशा शरीर के अन्दर रहता है जिसे हम, परा जगत कहते हैं। इन्द्रिय जगत का जीवन, एक पेड़ है जिसका बीज जीव, परा जगत में रहता है। इसीलिये सत्संग को समय देकर जो मनुष्य, परा जगत के ज्ञान हेतु 'परा जगत की जागृति' को प्राप्त नहीं होता, उसका 'इन्द्रिय जगत का जीवन' सफल नहीं हो सकता। सन्त तुलसीदास ने इस विषय पर यहां तक कहा है कि

काहू न कोई सुख दुख का दाता।
निज कृत कर्म भोग सब भ्राता॥

संत तुलसीदास का भी मत यही है कि जो व्यक्ति जीवन के दोनों क्षेत्रों में कर्म के लिये, समय नहीं निकालेगा वह कभी सुखी नहीं रहेगा।

सत्संग की महिमा अपरम्पार है।

सत्संग तो 'द्वैत जगत' के आदिकाल से हो रहा है। जीवन वहीं है, जहां जीव है। जीव, केवल सत् के क्षेत्र में है। अतः द्वैत जगत में जीव का सत्संग, शून्य होना असंभव है। यद्यपि मात्र जीवों में मनुष्य, दोनों तरह के कर्म करने में सक्षम है इसीलिये निद्रा के समय तो संसार के समस्त जीवों का सत्संग होता ही है। साधारण मनुष्य का 'इन्द्रिय जगत का जीवन', रात्रि आते आते रूक जाता है और तभी जीव का विचरण, सत् के क्षेत्र में सत्संग हेतु अपने आप होने लगता है। संसार के समस्त जीवों का यह जीवन सत्य है।

जीव के पास कर्म करने के लिये दो क्षेत्र हैं-शरीर के अन्दर और शरीर के बाहर। इन दोनों क्षेत्र की अपनी अपनी शक्तियां, हर समय कार्यरत रहती हैं। शरीर के अन्दर सत् की शक्ति, 'होनी की शक्ति' के रूप में हर समय कार्यरत रहती है। हर जीवन में एक मन है। मन पर ये दोनों शक्तियां, एक साथ विपरीत दिशाओं में कार्यरत रहती हैं। निद्रा की अवस्था में 'क्रिया शक्ति', शून्य हो जाती है परिणाम स्वरूप मन, पूर्ण रूप से 'आन्तरिक क्षेत्र' में खिंच जाता है और सत्संग आरम्भ हो जाता है।

साधारण मनुष्य, कर्म का अर्थ नहीं समझता-क्योंकि उसे ज्ञान नहीं है। अधिकतर व्यक्ति, इन्द्रिय जगत के कर्मों अर्थात् स्थूल कर्मों को ही, कर्म मानते हैं। इन कर्मों में प्रयत्न, व्याप्त है। इस कारण अधिकतर व्यक्ति, प्रयत्नशील कर्मों को ही कर्म मानते हैं।

सत्य यह है कि कर्म मात्र मन करता है।

अतः मन का विचरण ही कर्म है।

मन के पास दो कर्म क्षेत्र होने के कारण मन का विचरण, दोनों क्षेत्र में होता है। मन, 'आन्तरिक क्षेत्र' का निवासी है और वह इन्द्रिय जगत के कर्म करने हेतु, इन्द्रियों (Vehicle) की मदद लेता है और स्वयं बगैर स्वारी के, इन्द्रियों के क्षेत्र में कभी प्रगट नहीं होता।

इन्द्रिय जगत का कर्म आरम्भ होते ही, 'आन्तरिक क्षेत्र का कर्म' रूक जाता है-अर्थात् सत्संग रूक जाता है, या मन-'सत् की शक्ति' लेना बन्द कर देता है। सत् की शक्ति की कमी में मात्र 'बुद्धि के क्षेत्र की शक्ति', कार्यरत हो जाती है। बुद्धि की शक्ति में थकावट है-जो कि सृष्टि की सबसे खराब चीज है। यह 'सबसे शक्तिशाली जीव नाशक शक्ति' है। इसके विपरीत, सत् की शक्ति-अर्थात् 'होनी की शक्ति', जीव को सृष्टि की सारी 'नुकसान पहुंचाने वाली शक्तियों' से बचाने वाली शक्ति है। अतः मात्र बुद्धि के क्षेत्र में कर्म करने वाला दुखी रहेगा। इसके विपरीत जो मनुष्य, सत्संग के पश्चात् इन्द्रिय जगत में कर्म करेंगे उनके मन में पिरोई हुई 'सत् की शक्ति', उनके मन को जीवनाशक प्रयत्नशील कर्मों के प्रभाव से बचाती रहेगी।

निद्रा के समय, जो सत्संग होता है-उस सत्संग में हम सबकी अनुभूति के अनुसार इन्द्रिय जगत में कार्य करने की शक्ति, तो उत्पन्न हो जाती है-लेकिन हमारे मन में वह शक्ति नहीं उत्पन्न होती, जो हमारे मन को उन दुःखो से बचा सके-जो प्रत्यनशील क्षेत्र में कर्म करने से उत्पन्न होती है। आन्तरिक क्षेत्र से अधिक शक्ति लेकर, इन्द्रिय जगत में कर्म करने की शक्ति-निद्रा की अवस्था में नहीं है। ज्यों ज्यों मन, उच्च जागृति की अवस्था में 'परा क्षेत्र में

विचरण' करने का अभ्यास (Meditation) बढ़ाएगा, त्यों त्यों वह अधिक से अधिक शक्ति लाकर इन्द्रिय जगत में कर्म करते हुए, द्वैत क्षेत्र में पिरोएगा और जितनी अधिक शक्ति, पिरोएगा उतना ही बड़ा योगदान, ब्रह्माण्ड के रख रखाव में देगा। इस प्रकार अनन्त मनुष्यों में यदि 1% मनुष्य भी, इस कर्म में दृढ़तापूर्वक व्यस्त हो जाएं तो वायुमंडल का सत्, 'रज और तम्' पर हावी होने लगेगा जिससे कि समस्त निर्जीव और निम्न स्तर के जीव अर्थात् समस्त समाज, अधिक प्रसन्नता का जीवन व्यतीत करने योग्य हो जाएगा।

धीरे धीरे साधक में 'परा चेतना', जागृत होने लगेगी और 'परा चेतना' को चार चरणों-(भावातीत, ब्रह्माण्डी, ईश्वरीय और अद्वैत) में बांटते हुए, ज्यों ज्यों साधक-परा जागृति के उच्च स्तर के चरणों को प्राप्त होकर-'आन्तरिक क्षेत्र से शक्ति', बाहर लाएगा-तब थोड़े समय में ही, बहुत अधिक शक्ति-परा क्षेत्र से, इन्द्रिय क्षेत्र में पिरोने में सफल हो जाएगा। समाज में यह विश्वास है कि 'सेवा का फल' मीठा होता है। पूर्ण जागृति प्राप्त करने के रास्ते पर हर साधक, अनन्त तक फैले ब्रह्माण्ड में रहने वाले समस्त प्राणी और शक्तियों की बड़ी सेवा करने में सक्षम है।

मात्र इन्द्रिय जगत की चेतना में रहकर जो मनुष्य, सेवा की साधना पकड़ कर अपने जीवन को खुशहाल बनाना चाहते हैं, वे मात्र छोटी छोटी सेवाओं को बड़ी बड़ी सेवा समझ कर अपना पूर्ण जीवन व्यतीत कर देते हैं, फिर भी उन्हें वह फल नहीं मिलता जिस फल की आकांक्षा से वे, सेवा की साधना पकड़ते हैं। इसी कारण, मात्र इन्द्रिय जगत के कर्मों में जीवन व्यतीत करने वाला मनुष्य हर समय प्रसन्न नहीं रह सकता। अनन्त स्तर की सेवा तभी सम्भव है जब अनन्त, 'अनन्त से शक्ति' प्राप्त करे। जीव अविनाशी होते हुए, सत् (अनन्त) का संग करे तभी अविनाशी जीव के लिये, अनन्त स्तर की सेवा करना सम्भव होगा।

द्वैत जगत के आदि काल में, अनन्त जड़ों का सत्संग आरम्भ हुआ। जिस सत्संग के परिणामस्वरूप, ब्रह्म से द्वैत जगत निकला जड़ों का यह सत्संग, अनन्त काल तक चलते ही रहना है अर्थात् इस सत्संग के रुकने से ही, 'प्रलय की

परिस्थिति' उत्पन्न होगी। इन जड़ों में 'जड़ मन के सत्संग' से प्राणी उत्पन्न हुए और अनन्त काल तक चलने वाले इस सत्संग से ही, जीवों का विकास हुआ। ध ीरे धीरे जीवों के विकास ने, मनुष्य को जन्म दिया।

मनुष्य का मन-ईश्वर का अंश, अविनाशी है।

इस मन के सत्संग से, ब्रह्माण्ड का रख रखाव अनन्त वर्षों तक चलता रहेगा। यही सत्संग, मनुष्य के जीव का उत्थान करके मनुष्य को 'ब्रह्म समाना' बना देगा अर्थात् सत्संग की महिमा, इतनी है कि 'जड़ मन' जिसके मन में 'ब्रह्म पिरोने से पहले', अस्तित्व भी नहीं था सत्संग ने उसे 'ब्रह्म समाना' बना दिया।

'ब्रह्म समाना', केवल जीव होता है-जो कि आदिकाल से ब्रह्म नहीं है, बल्कि सत्संग द्वारा ब्रह्म हुआ-परन्तु भावों से परे क्षेत्र में 'निर्गुण निराकार तत्व का सागर', वह ब्रह्म है-जो अनादि और अनन्त है, उसमें मन नहीं है। हमारी अनुभूति है कि इच्छाएं, मात्र मन में होती हैं अर्थात् अनादि और अनन्त ब्रह्म की कोई इच्छा सम्भव नहीं है। मात्र उसके अपने स्वभाव से और उसकी 'होनी की शक्ति' से सब कुछ हो गया और होता चला जा रहा है।

मन में ब्रह्म पिरोता है और मन में ही, इच्छाएं जन्म लेती हैं। इच्छाएं, भावों का एक समूह होता है इस तरह से मन में उठते हुए हर भाव का संग, मन में 'पिरोए हुए ब्रह्म' से हो जाता है इस तरह प्रकृति में भावों का सत्संग होने लगता है।

इस लेख में दर्शाये हुए सारे सत्संगों में भावों का सत्संग, सर्वश्रेष्ठ कोटि का सत्संग है-जो मनुष्य को 'ब्रह्म समाना' बनाता है। 'ब्रह्म समाना' होने के पश्चात ईश्वर अंश, कर्म विद्यालय में आकर-अपनी विद्या को पूर्ण कर के 'पिता समान परमात्मा' के पास वापस चला जाता है और अपने पिता के साथ रहने योग्य हो जाता है। इसी को मोक्ष कहते हैं।

ईश्वर की शरण

भ० गीता (18.66) में जब अर्जुन श्री कृष्ण के साथ बातचीत से अन्त तक सतुष्ट नहीं हो पाए, तब उन्होंने श्री कृष्ण से कहा कि मैं आपको सर्वश्रेष्ठ मानता

हूं। इसलिए आप मुझे आज्ञा दें कि मुझे क्या करना है।

तब श्री कृष्ण ने उत्तर दिया, तुम्हें केवल मेरी शरण में आना है

सर्वधर्मान परित्यज, मामेकं शरणम् ब्रज।
अहम् त्वा पावेम्यो मोक्षयिष्यामि, मा शुचः॥
तू सारे धर्मों को त्याग कर मेरी शरण में आ जा-
मैं तुझे, तेरे सारे पापों से मुक्त कर दूंगा-तू चिंता मत कर।

उपरोक्त पंक्तियों द्वारा, जो भी श्री कृष्ण की शरण में आएगा उसके सारे पाप कृष्ण भगवान माफ कर देंगे। इस कारण मनुष्य को सारे धर्मों को छोड़कर ईश्वर की शरण में जाने की सलाह दी जाती है।

द्वापर में श्रीकृष्ण, अर्जुन के सखा थे-अतः उनके लिए श्रीकृष्ण की शरण में जाना संभव था-परन्तु आज का साधारण मनुष्य, श्रीकृष्ण को कहाँ ढूँढ़े? श्रीकृष्ण की शरण में जाने की कला क्या होगी? जिस प्रकार से सूर्य भगवान तो हमेशा सूर्य लोक में रहते हैं परन्तु 'सूर्य भगवान के प्रशाद' या शक्ति के माध्यम से सूर्य भगवान, पृथ्वी के हर भाग में नित्य, जहां भी रहेंगे वहां धूप और गर्मी तो अवश्य रहेंगे। इसी प्रकार से श्रीकृष्ण (अनादि और अनन्त ब्रह्म) तो हर युग में 'भावातीत क्षेत्र' (Transcendental Field) में ही रहेंगे उनकी 'होनी की शक्ति' हर जगह व्याप्त होगी।

जहां ब्रह्म होगा-वहां ब्रह्म की शक्ति की कमी, हो ही नहीं सकती।

ब्रह्म का संग करने में 'मन' सक्षम है क्योंकि वह, ब्रह्म का अंश है। खूंटे से बंध े हुए बछड़े को जब खोलकर स्वतन्त्र कर दिया जाता है तो वह, सीधा अपनी मां के पास भागता है 'खूंटे रूपी बुद्धि' से मन, हमेशा बंधा रहता हे।

ध्यान के समय जब वह इन्द्रियों से परे होकर-बुद्धि से परे होने के लिए एकान्त में अंधेरे में, किसी कुचालक पर सुविधाजनक आसन में बैठकर एक बार ईश्वर को मन में याद कर के मन को स्वतन्त्र (Relax) छोड़ देता है तो मन, अनन्त के क्षेत्र में (In the pen field) ब्रह्म को ढूंढ़ने हेतु इधर उधर अशान्त

होकर भटकने लगता है और अभ्यास (Meditation) के माध्यम से ज्यों ज्यों 'ब्रह्म का मार्ग' पाने में सफल होता है त्यों त्यों वह शान्त होकर ब्रह्म की ओर अग्रसर होता है।

सन्त कबीर ने जीव और ब्रह्म के मिलन (योग) की एक पहचान बताई हैं-जब मनुष्य को प्रतीत हो कि कुछ समय के लिए उसका 'मैं' अदृश्य हो गया था तो उसे समझ लेना चाहिए कि उस समय उसका मन, अपने में 'ब्रह्म शक्ति' पिरोने में व्यस्त था। अभ्यास करते करते हर साधक को यह प्रतीत होने लगता है कि यदि वह ध्यान के लिए 30 40 मिनट बैठता है तब मात्र 'ब्रह्म के मिलन' के कारण ही, वह शान्त और संतुष्ट होकर ध्यान पर से उठता है।

सतसंग ही जीवन है।

जड़ों के सत्संग से, द्वैत जगत पैदा हुआ।

जड़ मन के सत्संग से, जीव पैदा हुआ।

निद्रा के समय जीवों के सत्संग से जीव का विकास हुआ।

विकास होते होते जीव ने मनुष्य का रूप धारण किया।

जीवों में मात्र मनुष्य, जब चाहे परा जगत के कर्मों में आकर ईश्वर की शरण में जाकर अधिक से अधिक 'ब्रह्म की शक्ति' अपने में पिरोकर, इन्द्रिय जगत में कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म करे और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा सुख का भोग करे, तो यह वह जीवन होगा जिस जीवन के माध्यम से 'सत् की शक्ति', पराजगत से इन्द्रिय जगत की ओर प्रवाहित होने लगेगी।

यह प्रवाहित शक्ति, समस्त ब्रह्मांड का रख रखाव करेगी।

ऐसे कर्मों में व्यस्त रहने वाले व्यक्तियों को सारे पापों से मुक्त कर देने का वायदा, भगवान श्रीकृष्ण के मुखार बिंद से निकला है अतः यह गलत नहीं हो सकता। व्यक्तियों में यह विश्वास समा गया है कि प्रारब्ध काटने से नहीं कट सकता परन्तु यदि प्रारब्ध का अर्थ पिछले जन्मों में किए हुए कर्मों का फल है, तो सन्त तुलसीदास ने भी रामचरित मानस में कहा है

निज कृत कर्म भोग सब भ्राता

कोई कर्म तो ऐसा है, जो समस्त दुःखदाई प्रारब्धों को काटने में सफल है। श्रीकृष्ण के अनुसार जिन कर्मों के द्वारा मनुष्य, ईश्वर की शरण में जा सकता है वे कर्म ईश्वर द्वारा सारी 'दुःखदाई प्रति क्रियाओं' से मनुष्य को मुक्ति दिलाने में सक्षम होंगे। ईश्वर की शरण में आने की महिमा के विषय में सन्त तुलसीदास ने लिखा है कि मात्र मेरे सम्मुख होने से मैं, उसके करोड़ो जन्मों के पाप को माफ कर देता हूं-

सन्मुख होय जीव मोहि जबहिं।

कोटि जन्म अघ नाशौं तबहिं॥

'होनी का क्षेत्र'-कृष्ण है। साधक का मन-अर्जुन है। कृष्ण की शरण में जाने हेतु मन का आन्तरिक क्षेत्र में भटकना, मन का कृष्ण की शरण में जाने का प्रयास है। मन का शान्त हो जाना, कृष्ण की शरण में पहुंच जाना है। अभ्यास (Meditation) से ज्यों ज्यों 'कृष्ण की शरण' का समय बढ़ेगा उसके सारे पाप कटते रहेंगे और दुख कम होते रहेंगे।

मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी शक्ति-ज्ञान है। जिस मनुष्य के पास अपने दुःखों के निवारण का ज्ञान है-वह कभी भी दुःखी नहीं रह सकता। सच्चाई यह है कि आज के विद्यालयों में अलग अलग विषयों के ज्ञान की शिक्षा दी जाती है परन्तु 'जीवन के ज्ञान की शिक्षा' नहीं दी जाती। परिणाम स्वरूप, विषयों के ज्ञान का विकास हो रहा है परन्तु जीवन, सुख की ओर नहीं बढ़ रहा है।

विषयों के ज्ञान की मदद से 'सामाजिक धन' अर्जित हो जाता है-जिससे सुख के साधन जीवन में आ जाते हैं। धीरे धीरे मनुष्य, सुख के साधनों के अधीन होता जाता है

'पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं'-

ज्यों ज्यों विज्ञान ने समाज में 'सुख साधनों' की बढ़ोत्तरी की; त्यों त्यों समाज में दुःख की बढ़ोत्तरी हुई।

मन में प्रश्न उठता है कि जीवन के 'सुखों का ज्ञान' कहां है और यह, समाज को कैसे प्राप्त हो?

यदि हम वनस्पति जगत की ओर अपना ध्यान ले जाएं, तो हर पेड़ का जीवन, दो क्षेत्र में है-पृथ्वी के ऊपर और जमीन के नीचे। जमीन के ऊपर पेड़, हमेशा हरा भरा रहे और खूब फल दे इसका ज्ञान, पृथ्वी की 'उपजाऊ शक्ति' बीज और खाद के ज्ञान में है। पेड़ को हरा भरा रखने का ज्ञान और फलों से लादने का ज्ञान, पृथ्वी के अन्दर के ज्ञान में तो है परन्तु तना, डाली, फूल, पत्ती के ज्ञान में नहीं है। यद्यपि बाह्य जगत का ज्ञान, कुछ सहायक हो सकता है परन्तु 'मूल ज्ञान' तो पृथ्वी के अन्दर ही है। इसी प्रकार से जीवों का जीवन दो भागों में बंटा है

(1) मन, इन्द्रियों के माध्यम से बाहर का सुख तो ले सकता है परन्तु रहता हमेशा अन्दर ही है। इस कारण बाहर का जीवन, अन्दर के मन को सुखी रखे इसके लिए 'आन्तरिक क्षेत्र का ज्ञान' अति आवश्यक है।

(2) मन जीव है और वह, अपने पिता स्वरूप परमेश्वर (जीवन के सुखों के समुद्र) के पास है। इस सुख की प्राप्ति के लिए जीव का अन्तर्मुखी होना आवश्यक है। अन्तर्मुखी होते ही, उसे 'परमेश्वर की शक्ति' मिलनी शुरू हो जाती है। यदि जीव, इस आन्तरिक शक्ति को लेकर बहिर्मुखी होना सीख ले और नित्य बार बार ऐसा ही करता रहे तो उसका सम्पूर्ण जीवन, खुशियों से भर जाएगा। ज्ञान का अर्थ है अनुभव। मनुष्य की अनुभूतियां ही, उसका ज्ञान है। हर मनुष्य को 'अन्दर का ज्ञान' चाहिए।

ज्ञान, मन को चाहिए। ज्ञान के लिए, 'अनुभव शक्ति' चाहिए।

हर मनुष्य की अनुभूति है कि जागृति बढ़ने के साथ साथ अनुभव शक्ति बढ़ती है। **हर मनुष्य जब निद्रा की ओर अग्रसर होने लगता है-तब उसकी 'अनुभव शक्ति', बहुत कम हो जाती है।** सच्चाई यह है कि घोर निद्रा में भी उसकी 'अनुभव शक्ति' शून्य नहीं होती।

जब भी कोई मनुष्य निद्रा के बाद, जागृति को प्राप्त हो जाता है-तो बहुधा

दूसरे, उस व्यक्ति से पूछते हैं कि निद्रा कैसी रही? जिस व्यक्ति को जैसी गहरी निद्रा आती है वह उतनी सुखदाई निद्रा का वर्णन करता है। अतः प्रमाणित हो जाता है कि निद्रा के समय ज्यों ज्यों मनुष्य, 'सुख की शक्ति के समुद्र' अर्थात् पिता स्वरूप परमेश्वर के समीप का आसन ग्रहण (उपासना) करता है त्यों त्यों निद्रा के समय 'सुख की अनुभूति' अर्थात् जागृति या चेतना, शून्य नहीं है।

जागृति और चेतना, पर्यायवाची शब्द हैं।

निद्रा की चेतना में, निद्रा की अवस्थाओं का ज्ञान है।

चेतना, बढ़ती हुई कर्म गति के साथ बढ़ती है और घटती हुई कर्म गति के साथ घटती है। जैसी चेतना वैसा ज्ञान अर्थात् कौन कितना ज्ञानी है यह मात्र उसकी चेतना पर निर्भर करेगा। कर्मगति, जिस क्षेत्र में होगी उसी क्षेत्र की चेतना (Consciousness) उभरेगी, यही प्रकृति का नियम है।

निद्रा के समय मन की कर्म गति, आन्तरिक क्षेत्र में रहती है-इसलिए मात्र 'आन्तरिक चेतना' उभरती है। संपूर्ण जीवन प्रदान करने वाला परमेश्वर, आन्तरिक क्षेत्र में है। यही कारण है कि जीवन का ज्ञान, मात्र आन्तरिक चेतना उभारने में है विषयों की चेतना उभारने में नहीं है।

विषयों के क्षेत्र में कर्म की गति बनाए रखकर, विषयों के क्षेत्र में चेतना में उभरे हुए विषयों के ज्ञान की मदद से, सुखी जीवन की प्राप्ति की आशा-मायावी जीवन है।

मनुष्य निद्रा के समय, सबसे निम्न चेतना में आन्तरिक क्षेत्र में प्रवेश करता है-तब मात्र निद्रा की अवस्था का ज्ञान तो उसे होता है। परन्तु 'पूर्ण आन्तरिक क्षेत्र का ज्ञान' नहीं होता। स्वप्न की चेतना, पूर्ण निद्रा की चेतना का ही एक भाग है यद्यपि यह निद्रा की चेतना से उच्च स्तर की चेतना है। धीरे धीरे चेतना, बढ़ती ही जाती है और जीव, 'इन्द्रिय जगत की चेतना' को प्राप्त हो जाता है। इन्द्रिय जगत, दो शक्तियों से संचालित है

(1) बुद्धि की शक्ति, जो कर्मेन्द्रियों को कर्म की दिशा देकर कर्म करवाती है।

(2) होनी की शक्ति, इन्द्रिय जगत में ईश्वर की सन्तानों की भलाई के लिए

कार्यरत रहती है। 'होनी की शक्ति', करनी की शक्ति पर हावी रहती है। 'होनी की शक्ति' सर्वशक्तिशाली है। इसीलिए सन्त तुलसीदास ने कहा है

होई है वही, जो राम रचि राखा।

होनी का क्षेत्र ही, कृष्ण है।

इन्द्रिय जगत दो शक्तियों से संचालित है। इन दो शक्तियों का क्षेत्र, अलग अलग है। बुद्धि की शक्ति का क्षेत्र लौकिक है। 'होनी की शक्ति', अलौकिक क्षेत्र की शक्ति है परन्तु कार्यकाल लौकिक क्षेत्र में है।

शरीर के अन्दर अनन्त यन्त्र, अलौकित शक्ति से ही संचालित रहते हैं। 'होनी की शक्ति' और शरीर के अन्दर स्थापित यन्त्रों को संचालित करने वाली अलौकिक शक्ति, दोनों एक ही हैं अलग अलग नहीं हैं। ब्रह्म एक है अनादि और अनन्त, सर्वशक्तिशाली है। इन्द्रिय जगत के अनुभव में आई हुई हर क्षेत्र की 'होनी की शक्ति' भी, एक ही है जो अनादि और सर्वशक्तिशाली है। इसीलिए होनी का क्षेत्र ही, कृष्ण है राम है, या ब्रह्म है।

अतः पूर्णतया स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में कर्म करने या होने से, इस क्षेत्र की चेतना जागृत हो जाएगी। इस क्षेत्र की पूर्ण चेतना में ही, इस क्षेत्र का पूर्ण ज्ञान हैं। इस क्षेत्र में, अनन्त जीवों के अनन्त आकारों और अनन्त क्षेत्रों के विकास का ज्ञान है जीवों की अनन्त आवश्यकता को अनन्त देवी देवताओं के माध्यम से पूर्ण करने का ज्ञान है समस्त वनस्पति जगत के तना, डालियों, फूल और पत्ती की रचनाओं का ज्ञान अनन्त ज्ञान, जिसे शास्त्रीय भाषा में 'अखंड ज्ञान' कहते हैं होनी का पूर्ण ज्ञान, होनी की पूर्ण चेतना में है।

सृष्टि का संपूर्ण ज्ञान, चार चेतनाओं में विभाजित है-निद्रा की चेतना, स्वप्न की चेतना, इन्द्रिय जगत की चेतना और होनी की पूर्ण चेतना। सारे जीवों में केवल मनुष्य साधना द्वारा, इन चारों चेतनाओं को प्राप्त हो सकता है। जिस साधना से प्राप्त हो सकता है वह साधना, मात्र पृथ्वी लोक पर होती है। यही कारण है कि जिस प्रकार से पृथ्वी पर पिता, अपने बच्चों को डॉक्टर अथवा इंजीनियर बनने के लिए दूसरे शहर में भेज देता हैं वे छात्रावास में रहते हैं और पढ़ाई समाप्त करके

वापिस अपने पिता के पास चले जाते हैं।

इसी प्रकार से प्रकृति में प्रावधान बना, कि परम पिता परमेश्वर-अपने उन बच्चों को जो मात्र तीन चेतनाओं में रहने योग्य हैं, उन्हें पृथ्वी लोक पर भेज दे-जिससे वे, कर्म करके पूर्ण चेतना अर्जित कर सकें। पृथ्वी लोक पर उनकी देख रेख के लिए, प्रकृति में अनन्त देवताओं का प्रावधान बना। देवताओं और उन मनुष्यों के बीच, जो कर्म के माध्यम से चौथी भावातीत चेतना जागृत करने में व्यस्त हो जाए एक प्राकृतिक नियम बना कि साधना करके, जो मनुष्य जितनी 'ब्रह्म की शक्ति', ब्रह्माण्ड में पिरोए जहां से देवतागण, उस शक्ति को ले सकें उसी अनुपात में ऐसे मनुष्यों के जीवन के 'सुख साधन' प्राप्त कराने में देवता उनकी मदद करें, जिससे उनकी आवश्यकताएं पूरी होती रहें। मनुष्यों की अपनी आवश्यकताएं घटें, वे आवश्यकताओं की पराधीनता से मुक्त हों यह सब, मन में पिरोई हुई, 'ब्रह्म की शक्ति' के द्वारा हो।

द्वैत और अद्वैत

हर प्राणी को दो जगत में रहना ही पड़ता है- (1) ज्यादातर लोग, जागृत अवस्था में इन्द्रियजगत में रहते हैं। मन जो स्वयं, कभी इन्द्रियजगत में आता ही नहीं अन्दर के जगत में रहते हुए, प्रकृति द्वारा प्रदान किए गए पांच वीडियो लाइन्स (ज्ञानेन्द्रियों) के माध्यम से बाहर के दृश्यों का सुख लेने में व्यस्त रहता है।

(2) लेकिन जीवन में ऐसे क्षण भी आते हैं-जब ये वीडियो लाइन्स, स्वतः काम करना बन्द कर देते हैं-उच्च स्तर के साधकों के जीवन में नित्य, कुछ समय के लिए ऐसे क्षण आते हैं जब वे, स्वेच्छा से इन्द्रिय सुख के जगत में ताला लगाने में सफल हो जाते हैं। मन, आन्तरिक जगत में विचरण करने के लिए बाध्य हो जाता है इस तरह से मन, 'आन्तरिक जगत' में केवल तब है जब वह इन्द्रिय सुख लेने में व्यस्त नहीं है। चाहे यह अवस्था, उसकी मजबूरी हो या स्वेच्छा से वह, मन को 'इन्द्रिय सुख' से विपरीत दिशा में मोड़ने में सफल हो जाय।

हर प्राणी के आन्तरिक जगत में दो तरह की शक्तियों का होना अनिवार्य हैं-(1) निर्गुण निराकार ब्रह्म की शक्ति और (2) मन पर पड़े हुए 'कर्म बन्धन' चाहे वे पिछले जन्म के हों, या इस जन्म के। शक्ति जो निर्गुण और निराकार अजर, अमर और अभय है कर्म से घटती बढ़ती नहीं। ऐसी शक्ति का एक कभी न खत्म होने वाला भण्डार, हर प्राणी के अन्दर है। मन, अपने 'कर्म बन्धन' के साथ जब इन्द्रिय सुख की विपरीत दिशा में, अग्रसर होता है तब उपरोक्त 'निर्गुण निराकार शक्ति' के समुद्र में इस प्रकार प्रवेश करता है जैसे शरीर, किसी नदी या समुद्र में स्नान की इच्छा से प्रवेश करता है। जब शरीर बाहर आता है, उस समय वह पानी में बिना भीगे हुए वापस नहीं आ सकता।

इसी तरह से जब मन, 'आन्तरिक जगत के निर्गुण निराकार ब्रह्म की शक्ति' के समुद्र में प्रवेश करने के बाद, इन्द्रिय जगत में वापस आता है-उस समय अपने अन्दर, कुछ 'निर्गुण निराकार शक्ति' को पिरोकर ही लौटता है। बाह्य जगत में शरीर, स्नान हेतु पानी में प्रवेश करके जब बाहर आता है तो कुछ पानी शरीर में पिरो जाता है और कुछ वायु मण्डल में शरीर के सुखने के समय चला जाता है। बिलकुल इसी तरह से जब मन आन्तरिक जगत के 'ब्रह्म की शक्ति' के समुद्र में प्रवेश होकर, इन्द्रिय जगत के सुखों में व्यस्त रहता है उस समय ब्रह्म की कुछ शक्ति, मन में पिरो जाती है और कुछ शक्ति वायुमण्डल में पिरो जाती है। जो शक्ति वायुमण्डल में पिरो जाती है, वह वायु मण्डल को शुद्ध करती है और वायु मण्डल के सत् को 'रज और तम' पर हावी होने में मदद करती है। और जो शक्ति, स्थायी रूप से मन में पिरो जाती है वह मन को 'मन पर पड़े कर्म बन्धनों' से मुक्त करने में मदद करती है। जब तक जीवन है तब तक नित्य कुछ नए कर्म बन्धन पड़ना और नित्य मन का कुछ कर्म बन्धनों से मुक्त होना, होता रहता है। मन, इन दो गतिविधियों से मुक्त नहीं होता।

मन में 'आन्तरिक जगत की शक्ति' दो अवस्थाओं में रहते हुए पिरोती है-(1) लेटे हुए बेहोशी की अवस्था में। (2) होशो हवास में और बैठी हुई अवस्था में। सत्य तो यह है कि मात्र प्रयासहीन क्षणों में 'आन्तरिक शक्ति', मन में पिरोना शुरू हो जाती है मनुष्य, चाहे जिस अवस्था में हो साधारण से साधारण

मनुष्य को भी, यह अनुभूति है कि नित्य ज्यादा से ज्यादा लोग, थकावट के बाद जब लेटकर सोते हैं उस समय वे, प्रयासहीन रहते हैं। जागृत अवस्था में मात्र बैठकर प्रयासहीन हो जाना ही, साक्षात् निर्गुण निराकार ईश्वर का ध्यान है यह ईश्वर के किसी नाम या रूप का ध्यान नहीं है।

जो निर्गुण निराकार है, वह मात्र 'अनुभव से परे क्षेत्र' में है। जीवन के सारे अनुभव, मात्र भावों के माध्यम से होते हैं-अर्थात् मात्र 'भावातीत क्षेत्र' (Transcendental Field) में यह शक्ति निर्गुण निराकार है। प्रकृति में अनादि काल से चौरासी लाख जड़ें, विद्यमान हैं। जब 'निर्गुण निराकार शक्ति', इन जड़ों में प्रवेश करती है तब वह चार तरह की शक्ति के रूप में प्रकट हो जाती है (1) निर्जीव वस्तुएं, (2) शक्तियां, (3) वनस्पति और (4) प्राणी।

अलग अलग प्राणियों का जन्म, न मालूम कितनी तरह की जड़ों की मदद से हुआ? इन प्राणियों में सबसे उच्च अवस्था का प्राणी, मनुष्य है। कुछ लोगों का यह विश्वास है कि सबसे पहला मनुष्य, उस समय पैदा हुआ जब यह शक्ति, सभी चौरासी लाख जड़ों के माध्यम से प्रकट हुई थी और तब, सृष्टि के सारे देवता भी खुश हुए थे।

चौरासी लाख जड़ों में एक जड़, मन के नाम से जाना जाता है। सारी चौरासी लाख जड़ें, अचेत हैं। इनमें चेतना प्रदान करने वाली शक्ति ही, 'निर्गुण निराकार ब्रह्म की शक्ति' है। यह 'चेतना शक्ति' ही, ऊपर बताए हुए चार रूपों में प्रकट होती है। जब यह, मन में प्रकट होती है केवल तब मन में ब्रह्म सुख (Bliss) उत्पन्न होता है। इसी के साथ साथ इस ब्रह्म सुख को महसूस करने की शक्ति अर्थात् 'चेतना' भी पैदा होती है। ब्रह्म सुख और ब्रह्म सुख को महसूस करने वाली शक्ति दोनों साथ साथ उभरती हैं।

आन्तरिक जगत में एक सुख (Bliss) है और बिना उस सुख के मनुष्य, 'इन्द्रिय सुख के सारे साधन' होते हुए भी इन्द्रिय सुखों को भोगने के लायक नहीं रहता। उसके पास छोटे से छोटे इन्द्रिय सुख को भोगने की चेतना नहीं है।

अतः आन्तरिक जगत का 'ब्रह्म सुख' या 'चेतन शक्ति' ही, आन्तरिक

जगत का धन है। धन की परिभाषा यह है कि धन, वह है जिससे कुछ खरीदा या पाया जा सके। बाहर के जगत का धन, 'इन्द्रिय सुख के साधन' तो खरीद सकता है लेकिन बाहर का धन, इस 'इन्द्रिय सुख' को भोगने में असमर्थ है।

आन्तरिक जगत का सुख या धन बाह्य जगत के सारे इन्द्रिय सुख भोगने की शक्ति पाने या खरीदने लायक है। अतः आन्तरिक जगत का धन (Bliss), बाह्य जगत के धन से कहीं ज्यादा मूल्यवान है। इस धन का 'कभी न खत्म होने वाला खजाना', तो सबके अन्दर है फिर कोई मनुष्य, गरीब कैसे हो सकता है?

सत्य क्या है?

ब्रह्म सुख (Bliss) और उसकी अनुभव करने की शक्ति, साथ साथ पैदा होती हैं। ब्रह्म सुख को अनुभव करने की शक्ति की कमी में, 'आन्तरिक जगत का खजाना' अनुभव नहीं होता। जो अनुभव नहीं होता वह न होने के बराबर है। अतः जिसे यह खजाना अनुभव नहीं होता वह वास्तव में बहुत गरीब है।

बहुधा देखा जाता है कि कुछ लोग, जो बाहर के धन की दृष्टि से समाज में बहुत अमीर समझे जाते हैं-उनका व्यवहार, बहुत गरीबों जैसा होता है। समाज, ऐसे व्यक्तियों को कंजूस या खराब विशेषणों से जोड़कर पुकारता है। जिसे भी आन्तरिक धन (Bliss) की अनुभूति है वह गरीब नहीं है। वह, कंजूस हो ही नहीं सकता। गरीबों और कंजूसों जैसा व्यवहार, जो भी करता है वह वास्तव में गरीब है, भले ही किसी को वह अमीर दीखता हो वास्तव में वह, 'आन्तरिक धन' के सन्दर्भ में गरीब है। समाज में, जगतगुरु शंकराचार्य, गौतम बुद्ध, परमहंस रामकृष्ण, विवेकानन्द जैसे अनगिनत लोग पैदा हुए, जिन्होंने बाह्य धन न होते हुए भी, अपने को कभी गरीब नहीं समझा ऐसे व्यक्तियों का सामाजिक जीवन में व्यवहार, कभी गरीबों जैसा नहीं रहा। धन न होते हुए भी अपने को गरीब न समझने का केवल एक कारण उभरा हुआ ब्रह्म सुख (Bliss) या विकसित चेतना (consciousness) है। विकसित चेतना, आन्तरिक धन का खजाना है।

जिस प्रकार से अमेरिका के डालर से हिन्दुस्तान के बाजार में सामान खरीदना असंभव है और हिन्दुस्तान के रुपए से अमेरिका के बाजार में भी सामान खरीदना असंभव है - उसी प्रकार से बाहर के धन से, जो कुछ 'आन्तरिक जगत' में है-उसे पाना असंभव है। कोई भी व्यक्ति, अपने मन को निकालकर बाहर मेज पर तो रख नहीं सकता क्योंकि मन कभी बाहर, आ ही नहीं सकता। इसलिए मन और 'मन के क्षेत्र' की चीजों को 'बाहर के धन' से पाना असंभव होगा।

मन की इच्छा, इन्द्रिय सुख की हो सकती है-लेकिन यह इच्छा, हमेशा 'आन्तरिक जगत' में है। इसलिए मात्र 'आन्तरिक धन' (Bliss) द्वारा सुख मिल सकता है। जिसके पास, आन्तरिक जगत को अनुभव करने की शक्ति नहीं है उसके पास 'आन्तरिक जगत का खजाना' (Bliss) होते हुए भी सुखी नहीं के बराबर है अर्थात् मन की 'इच्छाओं की पूर्ति के साधन' होते हुए भी सुख नहीं है। अतः यह समझना आसान हो गया कि संत तुलसीदास ने क्यों लिखा

जो इच्छा करिहहुं मन माहीं, हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं।

आपकी इच्छाएं, मात्र 'ब्रह्मसुख में लीन' रहने की हो सकती हैं और 'इन्द्रिय जगत की सामग्री' की भी, हो सकती हैं। इच्छाएं कुछ भी हों इच्छाएं, मात्र 'आन्तरिक जगत' में हैं भले ही उनकी पूर्ति अर्थात् उनका फल, बाहर हो। 'इच्छा पूर्ति शक्ति' मात्र आन्तरिक धन द्वारा संभव है तो भी उनका पूरा होना, बाहर ही होगा। इसीलिए समाज में दो तरह के महात्मा मिलते हैं

(1) एक वे जो अपने पास, कुछ भी न रखते हुए अपने को सर्वशक्तिशाली समझते रहे जैसे महर्षि वेद ब्यास या वशिष्ठ गुरु या परमहंस रामकृष्ण या इस कलियुग में देवराहा बाबा।

(2) दूसरे वे महात्मा हुए, जिनके पास बाहर का भी सब कुछ था और सब कुछ होते हुए भी, वे बाहर की हर चीज से विरक्त रहते थे।

इसी को लेखक, अद्वैत जगत की शक्ति को-द्वैत जगत में प्रकट करना-अर्थात इन्द्रियों के जगत में, 'अद्वैत जगत की शक्ति' का प्रकट होना कहता है। इस दूसरे तरह के उच्च कोटि के व्यक्ति जैसे राजाजनक, या 'हरे राम हरे कृष्ण संस्था के संस्थापक प्रभुपाद' या आजकल के व्यक्तियों में महर्षि महेश

योगी हैं।

शक्ति तो केवल एक है; वह भी निर्गुण निराकार।

जिसने भी, इस शक्ति को प्राप्त करने में सफलता पाई और जिस जन्म में पाई उसके पहले वह, कितने जन्म ले चुका है शायद वह स्वयं नहीं जानता ? यदि इस जन्म में कुछ नए 'कर्म प्रभाव' नहीं भी पड़े, अथवा जितने पड़े सब मिट गए; तो भी पिछले जन्मों के 'कर्म प्रभाव सम्बन्धी इच्छाओं' को जब वर्तमान जीवन में उच्च स्तर की 'विकसित चेतना' या आत्मसत्ता अर्थात् 'आन्तरिक धन' (Bliss) मिला, तो इन इच्छाओं के आधार पर बाहर के जगत में अलग अलग महात्माओं के जीवन ने, अलग अलग रूप धारण किये। अत: यह प्रमाणित है कि इस जीवन में एक ही, न बदलने वाला सत्य है जिसे हम, 'इच्छा शक्ति' या 'विचार शक्ति' या 'Thought Force' कहें लेकिन हर जन्म लेने वाले व्यक्ति के अन्दर, समय के साथ साथ बदलने और नष्ट होने वाली इच्छाएं (Thoughts) भी हैं। इन्हीं इच्छाओं (Thoughts Force) के सहारे बाह्य जगत, सतयुग से कलियुग तक हर दिन बदलता रहा है और बदलता ही रहेगा। जो व्यक्ति चेतना का विकास करके, अपने 'आन्तरिक जगत के खजाने' की अनुभूति करने में सफल होगा वह वास्तव में धनवान होगा और उसका व्यवहार भी, धनवानों जैसा होगा। मेरी हार्दिक इच्छा है कि सभी साधक, 'अद्वैत की शक्ति' को द्वैत जगत में प्रकट करने की कला के माध्यम से, ज्यादा से ज्यादा धनवान बनने में सफल हों।

धर्म और धर्म का पालन

धारण करने योग्य कर्मों को धर्म कहते हैं। लोग सिखाते हैं कि सत्य बोलो, किसी को दु:ख न दो, अपनी मातृभूमि और देश के प्रति कर्तव्य का पालन करो इत्यादि। एक युग था जब समाज, केवल वर्णों (जातियों) में विभाजित था उस समय चारों वर्णों को मात्र अपने लिए निर्धारित कर्मों में व्यस्त रहने को ही, धर्म का पालन कहा जाता था। समाज, जाति, कुटुम्ब और सम्बन्धियों इत्यादि के प्रति कर्तव्य का पालन करने से उन की शक्ति के आधार पर जीवन में अच्छे फल मिलते हैं। लेकिन वह जीवन किसी सामाज, जाति, कुटुम्ब, सम्बन्धी या देश का

दिया हुआ नहीं है।

समस्त प्राणी, प्रकृति की देन है-जिसे हम 'ब्रह्म तत्व' कहते हैं। यह तत्व, सर्वव्यापी और सर्व शक्तिशाली है। जीवन के सारे दु:खों का मूल कारण, मात्र मन में 'ब्रह्म के तत्व' की कमी है। हो सकता है कि कुछ साधकों को अपने अलग अलग दु:खों का कारण, अपनी परिस्थितियों में दिखायी देता हो लेकिन यह तो जीवन का मायावी रूप है। मन में 'ब्रह्म के तत्व' की कमी में, हमारी जाग की अवस्था कम हो जाती है। निम्न स्तर की जाग के कारण, जीवन के दु:ख सुख सम्बन्धी गलत धारणाएं, हमारे मन में बैठ जाती हैं। लेकिन सत्य तो यही है कि मन में मात्र 'आत्मतत्व की कमी' ही हमारे दिल के दुख, बौद्धिक परेशानियों और शारीरिक रोगों के कारण हैं। इसलिए सर्वश्रेष्ठ धर्म तो 'ब्रह्म के तत्व' को धारण करना है। भ० गीता (2.40) में इस बात को निम्न श्लोक द्वारा समझाया गया है

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायतो महतो भ्यात्।

अर्थात् धर्म का थोड़ा भी पालन करना, महान भय से मुक्त कर देता है। थोड़ा का अर्थ क्या है ?

महर्षि महेश योगी का कहना है कि यदि किसी देश के एक प्रतिशत व्यक्ति केवल 30-30 मिनट दिन में तीन बार 'ध्यान का अभ्यास' शुरू कर दें-तो उस देश के अपराधों में अपने आप कमी आ जायेगी। उनका यह भी कहना है कि यदि एक प्रतिशत भी ध्यान न करें और केवल 7000 व्यक्ति, एक स्थान पर नित्य 'सामूहिक ध्यान' करें तो भी उस देश की जनसंख्या, चाहे जितनी हो कुछ दिनों में वहां अपराधों में निश्चित रूप से कमी होने लगेगी।

बहुत से शास्त्रों में कुछ महात्माओं के मुखारविन्द से कहे हुए वाक्य मिलते हैं कि दो मिनट का या कुछ क्षणों का ध्यान, न मालूम कितने जन्मों के पाप नष्ट करने में मदद करता है। ध्यान केवल, 'गहरा से गहरा आराम' लेने की विधि है। हर मनुष्य की दिनचर्या, अलग अलग होगी। जो जिस तरह के कामों में व्यस्त रहता है, वह उस तरह के काम में निपुण होता चला जाता है थोड़े समय में वह, ज्यादा काम करने में समर्थ हो जाता है। उसकी अवस्था में इस तरह के

बदलाव का कारण, मात्र उस का अभ्यास होता है। बिल्कुल उसी प्रकार से वे साधक, जो 'ब्रह्म के तत्व' को धारण करने हेतु गहरे आराम की विधि का नियमित अभ्यास (Meditation) करने लगते हैं वे थोड़े से ही समय में बहुत गहरे आराम करने में निपुण हो जाते हैं। गहरे आराम का अर्थ है मन का काफी गहराई तक अन्दर चले जाना।

कुछ लोग, गोता लगाने का अभ्यास करते हैं।

जिनका अभ्यास बहुत बढ़ जाता है वे मात्र कुछ क्षणों में ही, समुद्र के तल तक पहुंच जाते हैं। जिस प्रकार गोताखोर का शरीर, अभ्यास करते करते कुछ क्षणों में ही समुद्र के तल तक जाने योग्य हो जाता है उसी प्रकार से लम्बी अवधि के अभ्यास (Meditation) के माध्यम से, महात्मा का मन मात्र कुछ क्षणों में भावातीत होकर वापस आने योग्य हो जाता है और दुबारा फिर, अन्दर आने की अवस्था में रहता है।

हर महात्मा, अपनी अवसथा के अनुसार अपने अनुभवों को प्रकट करता है। केवल उच्चकोटि के महात्माओं द्वारा ही, यह कहा जाता है कि मात्र कुछ क्षणों का ध्यान, कई जन्मों के पाप नष्ट करने में समर्थ है। कई जन्मों के संस्कार (पाप) तो, न मालूम कितनी गहरी पर्तो में होंगे लेकिन ध्यान के समय मन: आन्तरिक जगत का मन्थन, बिल्कुल ऐसे ही करने लगता है जैसे मथानी दही को मथती है। उच्चकोटि के महात्माओं का मात्र कुछ क्षणों का ध्यान, न मालूम कितने गहरे संस्कारों को मथकर मन की सतह तक लाने में सक्षम है इसलिए वे ध्यान को बहुत महत्व देते हैं।

लेकिन समाज के साधारण मनुष्यों द्वारा, ऐसी बातें सुनने को नहीं मिलती। एक विशेष बात, और है कि समय बीतने के साथ साथ सामजिक वातावरण पिछले लाखों बरसों से केवल दूषित ही होता चला जा रहा है इसीलिए कुछ लाख साल पहले, जितना अच्छा परिणाम कुछ क्षणों के ध्यान से मिलता था अब कुछ मिनटों के ध्यान से भी नहीं मिलता।

जिन लोगों की दिनचर्या ऐसी हो कि वे तीन बार ध्यान करने का समय, न

निकाल सकें-उन्हें कम से कम, दो बार आधे घण्टे के लिए अवश्य बैठना चाहिए। भगवान ने हर व्यक्ति को एक दिन में 24 घन्टे का समय दिया है। यदि हम इस 24 घन्टे में से एक या डेढ़ घंटा, ईश्वर के काम में लगा दें और बाकी समय अपने अन्य कार्यों में खर्च करें, तो भ० गीता के पहले लिखे गये श्लोक (2.40) के अनुसार, एक या डेढ़ घंटे धर्म का पालन भी करते रहें, तो हमारा जीवन निश्चित रूप से सुख की ओर मुड़ेगा।

अधिकांश बच्चों के शुरू का समय, 'विद्यार्थी जीवन' कहलाता है। विद्यार्थियों का सबसे बड़ा धर्म, अपनी शिक्षा में ज्यादा से ज्यादा व्यस्त रहना है। लगभग 24 25 वर्ष तक इस धर्म के पालन के बाद भी अधिकांश को कोई उपयुक्त काम नहीं मिलता। गृहस्थ जीवन कैसे चलेगा यह तनाव भी बढ़ने लगा है।

यदि इतने समय तक कोई भी व्यक्ति थोड़ा सा समय, 'ब्रह्म के तत्व' को धारण करने के धर्म के पालन में दे-तो उसके पूरे जीवन में निश्चित रूप से उसके बचपन जैसी खुशियां बनी रहेंगी, वे कभी कम नहीं होंगी। भगवान श्री कृष्ण ने भ० गीता में कहा है कि 'ब्रह्म के तत्व' को धारण करने से बड़ा, कोई धर्म नहीं है। इस धर्म के पालन में थोड़ा सा भी समय देने से मनुष्य, चिन्ता मुक्ति की ओर निश्चित रूप से मुड़ जायेगा।

अजेय सत्ता

सत्य के रास्ते पर हमेशा ही जीत होती है-'सत्यमेव जयते'। आत्मशिक्षा की कमी में समाज, इसका यह अर्थ करने लगा कि सत्य बोलने वाले की हमेशा जीत होती है। **जबकि सच तो यह है कि मात्र आत्मा की सत्ता ही सत्य है, इसलिए जीवन में 'आत्म सत्ता' को बढ़ाने का रास्ता ही 'सत्य का रास्ता' है।** आत्मसत्ता निश्चय ही अजेय है। आत्म सत्ता, 'इच्छापूर्ति सत्ता' है। आत्म सत्ता से सम्बन्धित ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान पाने के रास्ते का लोप होने पर मनुष्य, सत्य का अर्थ सच बोलना लगाने लगा। सच बोलना, अच्छे अच्छे कामों का आधार है। अत: समाज में अच्छे बुरे काम की काट छांट होने लगी। समाज अच्छे कामों को पकड़ना और बुरे कामों को छोड़ना सिखाने लगा। जब 'आत्म सत्ता' नहीं बढ़ायी जाती तो वह

कम अवश्य होने लगती है। इस सत्ता के कम होने के रास्ते पर, अच्छे अच्छे कर्म सम्बन्धित संस्कार डालने तथा 'खराब कर्म सम्बन्धित संस्कार' न डालने की बात करने लगते हैं। मनुष्य का मन, धीरे धीरे द्वैत के दलदल में धंसने लगता है।

द्वैत के दलदल में धंसना ही, समस्त दुखों का कारण है।

आत्म सत्ता, जीवनी शक्ति है यह ध्यान के अभ्यास (Meditation) के माध्यम से मन में संचित होती है। जब मनुष्य, ध्यान के बाद अपनी नित्य की 'क्रियाओं के क्षेत्र' में आता है तब जीवन के अलग अलग पहलुओं को मन, यह सत्ता प्रदान करता है। मनुष्य, जितना ज्यादा 'ध्यान के अभ्यास' में निपुण होता जाता है उसके जीवन के विभिन्न पहलुओं से यह शक्ति, और अधिक क्रियाशील होने लगती है। मनुष्य की सारी दैनिक क्रियाओं का आधार, मनुष्य की इच्छाएं ही होती हैं।

आत्म सत्ता, इन इच्छाओं की पूर्ति में अपना योगदान देती है और जितनी आत्मसत्ता होती है-उसी के अनुपात में उसके जीवन के अलग अलग पहलुओं की इच्छाएं पूरी होती हैं। इसीलिये सत्य के रास्ते पर चलने के लिए, हमेशा हमारे ऋषि मुनियों ने अपने ग्रन्थों में कहा है। लेकिन निम्न स्तर की सामूहिक चेतना के कारण, आज का समाज इसका सही अर्थ नहीं लगा पाता और हर मनुष्य के दिल में यह कूट कूट कर भरा है कि उसके सुख का कारण जीवन के अलग अलग क्षेत्रों में, की गई क्रिया है जिसका आधार, मात्र 'बौद्धिक विकास' से है यही माया है और इस माया के दलदल से निकलना बहुत मुश्किल है।

अब हम, इस सत्ता को अपने जीवन के 'अनुभव के क्षेत्र' में देखकर-जानने और समझने की कोशिश करेंगे-हर पौधे में प्राण है। पेड़, सबसे सरल जीवात्मा है। पेड़ के जीवन की क्रियाएं मात्र तना, डालियां, पत्तियां, फूल और फल तक सीमित हैं। लेकिन ये क्रियाएं तभी तक हैं जब तक पेड़ में जान है। बिल्कुल उसी तरहजैसे मनुष्य के जीवन में क्रियाएं तभी तक हैं जब तक उसके शरीर में प्राण हैं। शरीर से प्राण के हटते ही जीवन की क्रियाएं खत्म हो जाती हैं। बिल्कुल ऐसा ही पेड़ के जीवन में भी होता है। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि पेड़ का जीवनदाता कौन है?

हम अच्छी तरह जानते हैं कि पेड़ की जड़ें-जमीन, खाद, पानी, धूप और हवा से एक रस (Sap) लेती हैं। यह रस, न तो धूप है न ही पानी है। यह रस ही पेड़ का जीवनदाता है। जड़ के माध्यम से यह जीवनदाता रस, पेड़ के प्रत्येक अंग में पहुंच जाता है। यदि पेड़ के जीवन की क्रियाएं जमीन के ऊपर हैं तो पेड़ के अंग अंग को जीवनी शक्ति पहुंचाने वाली जड़, हमेशा ही दूसरे क्षेत्र यानी जमीन के नीचे है पेड़ की क्रियाओं के क्षेत्र में नहीं है।

इसी प्रकार यदि मनुष्य, अपने जीवन का निरीक्षण करे-तो यह सरलता से अनुभव हो जायेगा कि यदि जीवन की तुलना वृक्ष से की जाय, तो वृक्ष रूपी मनुष्य के जीवन का आधार, मन होगा। यदि उसकी क्रियाएं बाह्य जगत के वायुमण्डल में हैं तो मन, हमेशा ही आन्तरिक जगत में है जिसे 'पेड़ रूपी जीवन' की जमीन कह सकते हैं। मन, मनुष्य की क्रियाओं के क्षेत्र में रह ही नहीं सकता। मन को 'जीवनी शक्ति' भी उस क्षेत्र से मिलती है, जिस क्षेत्र में जीवन की क्रियाएं नहीं हैं लेकिन जब तक जीवन की क्रियाएं होती रहती हैं अर्थात् जब तक हमारे विचार तथा क्रियाएं बुद्धि के नियंत्रण में रहती हैं, तब तक मन के लिए यह सम्भव नहीं होता कि वह क्रियाओं के जगत को छोड़ दे। यही कारण है कि हर प्राणी के लिए आराम (Relax) अनिवार्य है। आराम के समय मन, क्रियाओं के क्षेत्र को छोड़ देता है और 'भावातीत क्षेत्र' (Transcendental Field) से जीवनी शक्ति लेने में व्यस्त हो जाता है। जिन्हें यह ज्ञान नहीं होता, उन्हें यह शक्ति केवल, सोते समय मिलती है लेकिन जिन्हें इसका ज्ञान है, उन्हें यह शक्ति निद्रा के समय भी मिलती है। वे जागती हुई अवस्था में भी एकान्त और अंधेरे में बैठकर ध्यान के अभ्यास द्वारा यह शक्ति लेने लगते हैं। अतः दूसरे तरह के व्यक्तियों के जीवन में आत्मसत्ता, पहली तरह के व्यक्तियों की तुलना में कुछ ज्यादा होती है।

पौधों के बीज, हमेशा जमीन में डाले जाते हैं। पेड़ का तना, हमेशा जमीन पर रहता है और सिरा हवा में रहता है।

आन्तरिक जगत ही ब्रह्मलोक है। भावातीत क्षेत्र, ब्रह्मलोक का आसमान है। ब्रह्मलोक का पूरा आसमान, एक सूर्य की तरह है और आन्तरिक जगत का सूर्य

ही परमात्मा है। मन आन्तरिक जगत की जमीन है। जिस प्रकार से पृथ्वीलोक में सूर्य की शक्ति, पृथ्वी तक आती है बिल्कुल उसी प्रकार आन्तरिक सूर्य (परमात्मा की शक्ति), मनुष्य के मन तक पहुंचती है।

परमात्मा की शक्ति, मन को प्रकाशवाद के माध्यम से तो प्राप्त की जा सकती है-लेकिन विकारवाद के माध्यम से परमात्मा की शक्ति, नहीं मिल सकती-भले ही कोई दूसरी शक्ति, मिल जाती है। मनुष्य उच्चकोटि का प्राणी है। सृष्टि का सबसे अधिक गुढ़ (Complicated) वृक्ष है वृक्ष दो तरह के फल नहीं दे सकता, लेकिन मनुष्य का जीवन तो एक ऐसे वृक्ष के समान है जिसमें अनन्त तरह के फल लगते हैं। इसलिए इस वृक्ष की जमीन (मन) में, अनन्त तरह के बीज होना आवश्यक है। हर व्यक्ति के लिए यह अनुभव करना, बहुत सरल है कि उसके मन में अनन्त इच्छाएं पड़ी हुई हैं भले ही कुछ इच्छाएं उभरी हुई हों और कुछ दबी हुई हों। ये इच्छाएं ही 'मनुष्य के वृक्ष रूपी जीवन' के बीज हैं और इन इच्छाओं की पूर्ति ही, इनके फल हैं। सोते समय या ध्यान के समय जब मन, भावातीत क्षेत्र (Transcendental Field) से 'आत्म शक्ति' लेने में सफल होता है जो कि इन बीज रूपी इच्छाओं के लिए, खाद पानी इत्यादि का काम करती है तब मनुष्य के विवेक के माध्यम से कुछ ऐसे स्वाभाविक कर्म होने लगते हैं जो उसकी अनन्त इच्छाओं की पूर्ति, अनन्त स्तर तक करने में सफल हो जाते हैं। इसीलिए मनुष्य का जीवन तो वह वृक्ष है जिसका आधार, ब्रह्मलोक की जमीन (मन) है और जिसके फल क्रियाओं या इन्द्रियों के क्षेत्र में हैं।

क्रियाओं या इन्द्रियों के क्षेत्र में, सत्य की शक्ति-आत्मशक्ति के माध्यम से, जो भी अपनी इच्छाओं की पूर्ति द्वारा अपने जीवन को सुखी बनाने में सफल हैं-केवल वही अजेय है। इस अजेयता का एक मात्र कारण, आत्म सत्ता है। जो व्यक्ति आये दिन, अपने जीवन में तरह तरह के विरोध देखता है और इन विरोधों को अपनी इच्छाओं की पूर्ति में अडंगे (बाधा) मानता है इन विरोधों और निराशा का कारण, उसके जीवन में केवल आत्मसत्ता की कमी है न कि दूसरों द्वारा विरोध या दूसरों द्वारा दिया गया धोखा, उस निराशा का कारण है। भविष्य में भी निराशा से बचने तथा मायावी दलदल से निकलने का रास्ता, आत्मसत्ता बढ़ाने में सफल होने से ही मिलेगा और यह तभी संभव होगा जब क्रियाओं की व्यस्तता कम हो और मन 'निष्क्रियता के सतत अभ्यास' (Meditation) द्वारा आत्सत्ता बढ़ाने को महत्वपूर्ण समझ कर उसके लिए समय निकाल सके।

नोट : 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 50/- (पचास) रुपये मनी आर्डर अथवा कैश; अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

-श्री राकेश गर्ग, केशव लैस इम्पोरियम,
दुकान नं० 91, लाजपतराय (रेहड़ी) मार्केट, हिसार-125001
मोबाईल : 098967-89678

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर, नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार के जपकक्ष में प्रातः 11.00 बजे से 12.30 बजे एवं प्रतिदिन सायं 3 बजे से सामुहिक ध्यान प्रयोगात्मक (Practical) और उसी मन्दिर में प्रति रविवार पारिवारिक ध्यान सत्संग सायं 5 बजे से सायं 7 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं:-

-सुरेश कुमार गुप्ता
1618, अर्बन स्टेट-2, हिसार-125005
E-mail : sureshgupta1936@gmail.com

PRINTED MATTER